(मूल-ग्रंथ)

(कवित्त)

लाजनि लपेटि चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो भाल बदन, रुचिर,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हिमें मोती माल होति,
पिय सों लड़कि पेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग दुरि मुरि जानि मैं ॥१॥

प्रकरण—प्रेमिका का रूपवर्णन है। रूप में नेत्र, मुख, भाल, मुसकान, दंत, वाणी और गति की मुद्रा का उल्लेख है। नायिका-भेद की परंपरा में रूपवर्णन का कार्य सखी करती है। पर स्वच्छंद रचना में रूपवर्णन प्रिय के द्वारा होता है। इसमें स्वारस्य अधिक होने से रत्नाकर जी ने बिहारी में भी रूपवर्णन में नायक की उक्ति को ही प्रमुखता दी है। बिहारी के पुराने टीकाकार परम्परा के विचार से ऐसी उक्तियों को सखी की ही उक्ति मानते आए हैं। रीतिमुक्त रचना का इस प्रकरण-पार्थक्य से भी रीतिबद्ध रचना से भेद हो जाता है। फ़ारसी का प्रवाह भी इसी के अनुकूल है।

चूर्णिका—*लपेटी* = लिपटी हुई, युक्त। *भेदभाय* = रहस्यात्मक भाव, गूढ़ भाव। *लोल* = चंचल। *चख* = चक्षु। *बदन* = मुख। *दसन०* = दाँतों की दमक फैलकर हृदय (वक्षःस्थल) पर मोती की माला का रूप धारण करती है। *लड़कि* = (ललकि) ललककर। *निधि* = कोश, खजाना। यह शब्द हिंदी में समुद्र अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। 'नीर-निधि' के लिए संक्षिप्त 'निधि' चलने लगा। पर 'समुद्र' अर्थ में यह पुल्लिंग है। यहाँ निधि शब्द यों तो स्त्रीलिंग में ही है। पर वह बाल के लिए है, इसलिए संबंध की 'की' ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सकती। फिर भी जगमगाना कोश-पक्ष में ही है

इसलिए यही अर्थ निर्गलित होता है। ऊपर मोतीमाल शब्द भी इसी पक्ष का समर्थक है। *बाल* = बाला, प्रेमिका। *अनंग०* = कामजन्य रंग (छटा) से मिलकर। *ढुरि* = मिलकर। ढुरना क्रिया का अर्थ यहाँ ठहरना है। *मुरि०* = मुड़ जाने में, घूम जाने में।

तिलक—प्रेमिका जब अपने चंचल नेत्रों को तिरछे करती है तो वह रमणीय जान पड़ती है। नेत्रों का तिरछापन लाजों से लिपटा रहता है और गूढ़ भावों से भरा होता है। उसमें विविध प्रकार की लज्जा रहस्यमय संकेतों से युक्त होती है। तिरछी चितवनी कुछ संकेत करती रहती है, प्रेम की अनुभूति व्यक्त करती है। उसका गौरवर्ण मुखसौंदर्य का घर ही है। भाल शोभामय है। जब वह मुसकराती है तो उसकी मुसकराहट में कोमलता और माधुर्य प्रकट होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि रस निचुड़ रहा है, टपक रहा है। मुसकराने के साथ ही वह बात भी करती है। उसकी बात मुसकान से युक्त होती है। मुसकराते हुए बात करने में दाँतों की दमक (चमचमाहट) ऐसी फैलती है कि जान पड़ता है मानो दंतपंक्ति का प्रकाशमय प्रतिबिंब उसके वक्ष पर मोती की माला हो गया है। वह प्रिय से ललककर बातें करती है। इसी ललक के कारण उसकी दंतपंक्ति खुलती है और उसका प्रकाश बत्तीस दाँतों (दानों) की मोती की माला दिखता है। वह सौंदर्यमयी बाला आनंद के कोश के रूप में जगमगाती है। इस जगमगाहट की छटा उस समय प्रतीत होती है जब वह मुड़ती है और उसके अंगों में कामजन्य छटा ठहरने लगती है।

व्याख्या—*लाजनि* = लाज का बहुवचन व्यक्त करता है कि उसकी लज्जा अनेक अनुभूतियों से विविध प्रकार की होती है और उससे अनेक रहस्यात्मक संकेत मिलते हैं। *लपेटी* = लाज से संपृक्त चितवन होती है। चितवन में लज्जा संश्लिष्ट रहती है। लपेटना क्रिया के दो अर्थ होते हैं, एक तो आवरण के रूप में लिपटना। दूसरे किसी पदार्थ में संश्लिष्ट होना। यहाँ दूसरा ही अर्थ प्रसंग-प्राप्त है। लज्जा चितवन में ऐसी संपृक्त है कि उसे उसके आवरण की भाँति सरलता से पृथक् नहीं कर सकते। कवि आंतर पक्ष की अभिव्यक्ति करने में निपुण है। *चितवनि* = इसके चितवान और चितवन दो रूप हैं। धातुरूप में न लगने से शब्द स्त्रीलिंग होता है। 'चितव' धातुरूप है, 'न' लगने से 'चितवन'

-चना जो स्त्रीलिंग है। स्त्रीलिंग रूप में 'न' के बदले 'नि' भी होता है। ऐसी स्थिति तिरछानि, मुसकानि, बतरानि की भी है। संयुक्त क्रियाओं में अंत की क्रिया में भी ऐसी स्थिति होने पर यही प्रक्रिया लगती है। 'जान' और 'जानि' दोनों रूप बनते हैं। जान-पहचान' में जान स्त्रीलिंग ही है। *प्रेमपगी* = पगी से स्पष्ट है कि बात में प्रेम अंतःप्रविष्ट है। पगने का अर्थ है अंतस् में प्रवेश कर जाना।

विशेष—*लोल-चख* = नेत्रों की चंचलता का वर्णन यौवन में करना काव्य-परंपरा है और वास्तविकता भी है। *भाल* = भाल का वर्णन युवतियों का होता है। पर उसकी विशालता का वर्णन युवक या पुरुष में ही होता है। इसीसे 'रुचिर भाल' कहा गया। *मीठी* = मधुर, प्रिय लगनेवाली। मीठी मुसकान को प्रेमपगी बतरानि के साहचर्य में देखें। पकवान चीनी की चाशनी में पागे जाते हैं। उनके कारण माधुर्य का होना सुसंगत है। कुछ मिठाइयों में चाशनी सुखा दी जाती है, पर कुछ में रसीली चाशनी भी रहती है। गुलाब-जामुन, रसगुल्ला रसदार चाशनी में पड़े रहते हैं। उनसे रस टपकता है। यहाँ मुसकान को रसदार चाशनी से युक्त समझिए। *मोती* = दाँतों की उपमा मोती से दी जाती है। दंतपंक्ति और मुक्ता-माला में साम्य भरपूर है। *अंगनि* = अंग और अनंग में विरोध है। पूरे पद्य में उज्ज्वल आभा का प्रकाश दिखाया गया है। केवल लज्जा का रंग हलका गुलाबी होता है। *अनंग* = काम का वर्ण श्याम होता है पर उस श्यामता पर बल यहाँ नहीं है। श्याम रत्न की किरणें भी प्रकाश की उज्ज्वलता से युक्त होती हैं।

छंद—मनहरण कवित्त—इसके प्रत्येक चरण में, १६, १५ के विश्राम से कुल ३१ वर्ण होते हैं। अंतिम अर्थात् इकतीसवाँ वर्ण सदा गुरु होता है। इसे घनाक्षरी भी कहते हैं।

'कवित्त' शब्द का प्रयोग व्यापक है। इस संग्रह का नाम 'घनानंद-कवित्त' है। पर इसमें केवल 'कवित्त' अर्थात् मनहरण घनाक्षरी का ही संग्रह नहीं है। सवैया, छप्पय और अनंगशेखर छंदों के अतिरिक्त इसमें दोहे सोरठे भी हैं। 'दोहे-सोरठे' तो सवैयों, घनाक्षरियों या छप्पयों के साथ हस्त-लेखों में रहते थे पर उनकी पृथक् संख्या नहीं लगाई जाती थी। जिस बड़े छंद

के साथ रहते थे उसी के अंग मान लिए जाते थे। जैसे सवैये के अनंतर यदि दोहा हो तो संख्या दोहे के साथ लगेगी। 'सवैया + दोहा' एक छंद माने गए। संख्या दोहे में लगाने पर भी उसको इसलिए नहीं कहते कि सवैये के बिना दोहे की संख्या होती है। यदि दोहा आरम्भ में भी आ जाए या सवैयों के साथ तो भी उसकी संख्या नहीं होती। इस संग्रह में सुभीते के लिए दोहे-सोरठे सबकी पृथक् संख्या मानी गई है।